eISSN:2581-4885
DEV SANSKRITI
VISHWAVIDYALAYA
PUBLICATION

RESEARCH ARTICLE

श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञ से सृष्टिचक्र की अवधारणा एवं प्रासंगिकता

आयुष मित्तल [1]

[1] पी.एच.डी. शोधार्थी, योग विज्ञान एवं मानव चेतना विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, भारत

*CORRESPONDENCE
Address
आयुष मित्तल, पी.एच.डी. शोधार्थी, योग विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, भारत फ़ोन नम्बर +91 9482589172
Email aush0310@gmail.com

PUBLISHED BY
Dev Sanskriti Vishwavidyalaya Gayatrikunj-Shantikunj Haridwar, India

OPEN ACCESS
Copyright (c) 2023 Ayush Mittal
Licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License

सारांश: वर्तमान समय में स्वास्थ्य एवं संकीर्ण मानसिकता के कारण संसार में पापाचरण बढ़ता जा रहा है। घनिष्ठ अपराधों को करने से पहले कोई भी एक क्षण के लिए भी नहीं विचार करता। वर्तमान मनुष्य के लिए मात्र अपना सुख ही जीवन का सार बन गया है। परंतु मनुष्य को यह समझने की आवश्यकता है कि लोकहित में ही उसका परम स्वार्थ निहित है। जो दूसरों के सुखों की व्यवस्था करता है उसके कष्ट स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित सृष्टि–चक्र की अवधारणा, श्लोक 3/10 से 3/15 के विशेष सन्दर्भ से हमें यह ज्ञात होता है कि लोक कल्याण के लिए मनुष्यों को उसमें अपना योगदान देने की आवश्यकता है जिसके लिए उसे अपने कर्तव्य–कर्मों का निर्वाह करना होगा। पापाचरण से बचने के लिए एवं परस्पर कल्याण के लिए हमें सृष्टि–चक्र के सिद्धांतों को अपने जीवन में उतारने की आवश्यकता है।

कूट शब्द: श्रीमद्भगवद्गीता, यज्ञ, सृष्टिचक्र

प्रस्तावना

भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं कि यज्ञ के उद्देश्य से किए जाने वाले कार्यों के अन्यत्र स्वार्थ भावना से किए जाने वाले कार्य कर्मबंधन वाले होते हैं। इसी स्वार्थ के बारे में पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी हमें बताते हैं की सामान्य रूप से जब हम स्वार्थ के विषय में चर्चा करते हैं तो उससे मन में नकारात्मकता की भावना मन में आती है। किसी भी व्यक्ति को स्वार्थी कहना उसकी आलोचना माना जाता है। परंतु इस विषय पर चिंतन किया जाए तो हमें इस अवधारणा में दोष दिखाई देता है। स्वार्थ के बिना तो यह सृष्टि अस्थिर हो जाएगी और प्राणियों का जीवन निर्वाह असंभव। स्वार्थ के बिना तो आत्मदेह की रक्षा एवं पालन पोषण हो ही नहीं सकता। किंतु स्वार्थ से फिर हम नकारात्मकता को क्यों जोड़ते हैं? पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार जिस स्वार्थ की आमतौर पर निंदा करी जाती है उसे हमें "अनर्थ" कहना चाहिए। उनके अनुसार पहले के विद्वानों ने भी विशुद्ध स्वार्थ को परमार्थ ही माना है। [1]

स्याना परमार्थस्य परार्थो बधैमर्तः।
योऽन्यान सुखयते विद्वान् तस्य दुखं विनश्यति ।।

"अर्थात्, लोकहित में ही अपना परम स्वार्थ निहित है । जो दूसरों के सुखों का आयोजन करता है, उसके दुःख स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं।" [2]

परंतु अधिकांश मनुष्यों में यह परमार्थ की भावना की अपेक्षा स्वार्थ "अनर्थ" रूप में विद्यमान दिखाई पड़ता है। जिस भी कार्य में मनुष्य को अपना लाभ दिखाई देता है उस कार्य को वह अत्यंत रुचि के साथ करता है। उस कार्य को सिद्ध करने के लिए अत्यधिक परिश्रम करता है। निःसंदेह इस प्रकार कार्य करने से मनुष्य के लिए वह कार्य बंधन का कार्य कारण बन जाते हैं। [3] इस विषय में भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन को यह ज्ञान दिया, कि विषयों का चिंतन करने से उनमें आसक्ति उत्पन्न होती है, जिससे मन में काम उत्पन्न होता है। यही काम आगे चलकर क्रोध, सम्मोह, स्मृति नाश एवं बुद्धि नाश का क्रमशः कारण बनता है। बुद्धि नाश होने से मनुष्य विवेकपूर्वक निर्णय नहीं ले पाता है। [4] अतः इसमें कोई संदेह नहीं है, कि मनुष्य को स्वार्थ से परमार्थ की ओर बढ़ना चाहिए। मनुष्यों में साधारण रूप से पाशविक प्रवृत्तियां, जिसमें वह दूसरों की अपेक्षा स्वयं के लाभ पर अधिक विचार करता है, पाई जाती हैं। वह देवताओं से भी मांगना तो चाहता है पर उनके प्रति कुछ भी समर्पित नहीं करना चाहता। इस विषय को श्रीमद्भगवद्गीता में बहुत ही गहनता से समझाया गया है। [5]

सृष्टिचक्र की अवधारणा

श्रीमद्भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में भगवान कहते हैं कि अपने कर्तव्य न निभाते हुए अन्य कर्मों में लगा हुआ मनुष्य कर्मों के जाल में फंसता चला जाता है। उस बंधन से बचने के लिए मनुष्य को अपने कर्तव्यों को यज्ञ की भावना रखते हुए (यज्ञार्थात्) करना चाहिए। [6] श्लोक संख्या 3/10 में भगवान श्रीकृष्ण बताते हैं –

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।। (श्रीमद्भगवद्गीता 3/10)

अर्थात्, प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि के प्रारंभ में यज्ञ सहित प्रजा को लक्ष्य कर उन्हें कहा कि यज्ञ से सब की वृद्धि करो एवं वह यज्ञ उनकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाला होगा। [7] प्रजा में तो देवता, पितृ, मनुष्य, पशु–पक्षी एवं वृक्ष आदि सभी प्राणी आते हैं। इन सब में विवेक, अधिकार एवं योग्यता प्रमुखता से मनुष्य में होने के कारण सभी के पालन का दायित्व भी उन्हीं पर है। पशु–पक्षी एवं वनस्पति में विचार करने के सामर्थ्य के अभाव में भी वे स्वाभाविक ही परोपकार करते हैं। देवता भी मनुष्य को उनके कर्मानुसार ही फल देते हैं। चौरासी लाख योनियों में मात्र मनुष्य की ही कर्मयोनी है। अन्य सब प्रमुखता से भोग योनियाँ ही है। अतः यहां प्रजा शब्द का प्रयोग मनुष्य के लिए ही हुआ है। [8]

यज्ञ शब्द से साधारण तौर पर हवन(या अग्निहोत्र) समझा जाता है। परंतु श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञ का अर्थ शास्त्र विहित कर्तव्य–कर्मों को विधान सहित करने से है। ऐसे ही कर्मों को करने का दायित्व मनुष्य पर है और प्रजापति ब्रह्मा के अनुसार उनका निर्वाह करने से उपयोगी साधन सामग्री की कभी कमी नहीं होगी। [9]

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।। (श्रीमद्भगवद्गीता 3/11)

अर्थात्, इन यज्ञ रूपी कर्तव्य कर्मों के माध्यम से देवताओं की उन्नति होगी और वह देवता प्रजा की उसी प्रकार उन्नति करेंगे। इस प्रकार परस्पर उन्नति से सभी का कल्याण होगा। [10]

पेड़ पौधों में सामान्य रूप से फल–फूल लगते हैं। अगर यही हमें अधिक संख्या एवं गुणवत्ता के साथ प्राप्त करने हो तो इनमे खाद आदि डालने से ही यह संभव हो पाएगा। उसी प्रकार जब मनुष्य अपने यज्ञ रूपी कर्तव्य–कर्मों का निर्वाह करता है, उससे देवताओं की पुष्टि होती है जिससे वह सभी भी अपना कर्तव्य पालन पूर्णता से करते हैं। जब भी मनुष्य यज्ञ कर्मों में कमी करता है, देवगण भी उसी प्रकार फल देने में सामर्थ्य रहित हो जाते हैं, जिससे हमें अनावृष्टि–अतिवृष्टि आदि देखने को मिलती है। इस सृष्टि की रचना इस प्रकार से

हुई है कि मात्र अपने लिए कुछ नहीं है – 'इदं ब्रह्मणे न मम'। सृष्टि की रचना इस प्रकार से हुई है कि मात्र भोग से मनुष्य का पतन ही होता है। इसके विपरीत परोपकार से सभी का परस्पर उद्धार होता है। [11]

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।। (श्रीमद्भगवद्गीता 3/12)

अर्थात्, यज्ञ रूपी कर्तव्य पालन से देवता भी मनुष्य को आवश्यकता अनुसार सामग्री प्रदान करते रहेंगे। वह सामग्री जो भी मनुष्य खुद तक सीमित रखकर सभी के परोपकार में नहीं लगाता वह चोर ही है। [12]

प्रकृति में सभी जीवों का सामान्य स्वभाव परोपकार का ही है, और मनुष्य इस उपकार को ग्रहण करके सदा ही इनका ऋणी रहता है। इसी ऋण से मुक्ति के लिए पंचमहायज्ञ का विधान बनाया गया है। अगर इस विधान का निष्ठापूर्वक निर्वाह नहीं किया जाए तो संपूर्ण संसार में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। स्वयं परमेश्वर भी सृष्टिपालन के लिए कर्तव्यों का सावधानी से निर्वाह करते रहते हैं, जिसके अभाव में संपूर्ण सृष्टि का सर्वनाश हो जाएगा। (श्रीमद्भगवद्गीता 3/23-24) [13]

जब तक मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होता, वह अपने शरीर के निर्वाह के लिए सदा चिंतित रहता है। अन्य किसी भी मनुष्य या प्राणियों के साथ कुछ भी बांटने में उसे संकोच होता है। उसे भविष्य में आने वाली अभाव की संभावित परिस्थितियों का भय रहता है। परंतु यह सब अज्ञानवश होता है क्योंकि भगवान की असीम कृपा से जीवन निर्वाह की सामग्री सभी को समान रूप से मिलती है। चाहे कोई जीव कितना ही छोटा हो या बड़ा हो, सबकी व्यवस्था भगवान करते हैं। जब पापी व नास्तिक मनुष्यों को भगवान जीवन निर्वाह की सामग्री प्रदान करते हैं, तो कर्मयोगियों के लिए तो कोई समस्या है ही नहीं। [14]

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।। (श्रीमद्भगवद्गीता 3/13)

अर्थात्, यज्ञ से शेष बचे हुए अनाज खाने वाले मनुष्य पाप मुक्त हो जाते हैं, यद्यपि पापी तो मात्र स्वयं के लिए ही पकाते हैं, जिससे वह पाप का भक्षण करते हैं। [15]

उपर्युक्त श्लोक में यज्ञशिष्टाशिनः(यज्ञशेष) होता है 'योग'। कर्तव्य-कर्मों का निर्वाह करने पर पापमुक्ति का साधन बनने वाला कल्याणकारी शेष 'योग'(समता) ही है। इसी को श्रीकृष्ण ने अमृत भी कहा है 'यज्ञशिष्टामृत भजः'(4/31) एवं पाप पुण्य का नाश करके समता प्रदान करने वाला भी कहा है। (2/40) मनुष्य को जो कुछ भी प्राप्त होता है वह स्थाई नहीं बल्कि बिछड़ने वाला होता है और कर्तव्य पालन के लिए मिलता है। मात्र अपने लिए कुछ नहीं है, सभी के साथ बाटने के लिए है। स्वयं के पास जितनी भी सामर्थ्य-सामग्री है, वह सेवा में व्यय हो जाए तो कल्याण भी पूर्ण ही होगा। [16]

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।
(श्रीमद्भगवद्गीता 3/14-3/15)

अर्थात्, सभी जीव अन्न से उत्पन्न होते हैं, जिसकी उत्पत्ति वृष्टि से होती है। वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ विहित कर्मों से उत्पन्न होता है। कर्मों की उत्पत्ति वेद(ब्रह्म) से होती है और वेद प्रकट होते हैं अक्षर ब्रह्म से। अतः सर्वव्यापी अक्षर ब्रह्म यज्ञरूपी कर्तव्य-कर्मों में नित्य प्रतिष्ठित हैं। [17]

विभिन्न जीवो के उनके प्रकृति अनुसार जो भी खाद्य पदार्थ हैं, उन्हें ग्रहण करने से उनके शरीर की उत्पत्ति एवं भरण-पोषण होता है। अन्न ही विभिन्न शारीरिक धातु जैसे रस, रक्त, वीर्य इत्यादि में परिणत होता है। पर्जन्य से ही अन्न की उत्पत्ति होती है और यज्ञ से ही पर्जन्य होती है। मनुस्मृति से भी इसकी पुष्टि होती है। [18]

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।। (मनु 3/76)

अर्थात् यज्ञाग्नि में विधिपूर्वक दी हुई आहुति सूर्य को प्राप्त होती है, जिससे वृष्टि होती है। वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है, जिससे प्राणियों की उत्पत्ति होती है। क्रियारूप कर्म भी वेद रूप ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है। कर्मों की उत्पत्ति का कारण भी वेद ही हैं। वेद भी अक्षर ब्रह्म परमात्मा से पुरुष के निःश्वास के समान उत्पन्न हुए हैं। परमात्मा सर्वगत है और यज्ञ विधि में वेद की प्रधानता के कारण उसमें सदा प्रतिष्ठित है। [19]

वर्तमान समय में सृष्टि चक्र की प्रासंगिकता

भगवान श्रीकृष्ण ऐसे मनुष्यों को सावधान करते हुए जो कि अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते आगे कहते हैं –

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।। (श्रीमद्भगवद्गीता 3/16)

हे पार्थ! जो भी पुरुष इस लोक में इस तरह परंपरा से प्रचलित सृष्टि-चक्र के अनुकूल नहीं चलता, वह इंद्रियों के द्वारा भोगों में रमण करने वाला पापायु मनुष्य व्यर्थ ही जीता है। [20] जो मनुष्य सृष्टि-चक्र के अनुसार नहीं चलते उनके लिए भगवान श्री कृष्ण ने पहले "वह चोर ही है" (श्रीमद्भगवद्गीता 3/12) और पाप का भक्षण करते हैं (श्रीमद्भगवद्गीता 3/13) कहा और इस श्लोक में पापायु एवं इंद्रियाराम कहा

है। इसलिए उनका जीवन व्यर्थ ही है। [21] सांसारिक साधन सामग्री में स्वामित्व का भाव रखने से उसका दुरुपयोग होता है। वहीं अगर हम सभी साधनों को ईश्वर की वस्तु मानकर उनका उपयोग करें तो उससे उनका उपयोग धर्म के अनुसार होगा जिसमें सभी का सुख एवं विकास निश्चित है। [22]

वर्तमान समय में जब विभिन्न प्रकार के अपराधों में बढ़ोतरी हो रही है और मनुष्य ही नहीं बल्कि समस्त प्राणी जगत को कष्ट एवं पीड़ा सहनी पड़ रही है, तो हम यह विचार करने पर विवश हो जाते हैं कि इन गंभीर समस्याओं का समाधान क्या होगा। इस समाधान के लिए हमें श्रीमद्भगवद्गीता में दिए इस सृष्टि–चक्र को समझ कर इसके सिद्धांतों को अपने जीवन में उतारने की आवश्यकता है। मनुष्य संसार में आनंद को ही सर्वोपरि मानता है। जो भी वह भागदौड़ एवं प्रयत्न करता है उसका परम उद्देश्य आनंद की प्राप्ति ही है। परंतु मनुष्य यह नहीं समझता कि आनंद भौतिक पदार्थों से नहीं प्राप्त होगा। यह तो आत्मा का गुण है। उसी आत्मिक सुख को प्राप्त करने के लिए हमें अपने हृदय में संयम, धैर्य, सहानुभूति, प्रेम इत्यादि को उत्पन्न करना होगा। इसके लिए हमें स्वार्थ, लंपटता एवं मानसिक चपलता को हृदय से विदा करना होगा। स्वार्थ का त्याग करने में कष्ट होता है परंतु उसके बिना आत्मिक सुख संभव नहीं है। [23]

निष्कर्ष

इस सृष्टि का सारा क्रम यज्ञ–चक्र की धूरी पर ही परिभ्रमण कर रहा है। परस्पर उदार सहयोग से ही सुव्यवस्था, प्रगति एवं सुख शांति बनी रहती है। मनुष्य में पाशविकता का दमन एवं ब्राह्मणत्त्व का उदय यज्ञ कार्य से होता है। अतः श्रीमद्भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में यह बताया गया है कि अपने कर्तव्य न निभाते हुए अन्य कर्मों में लगा हुआ मनुष्य कर्मों के जाल में फंसता चला जाता है एवं इस बंधन से बचने के लिए मनुष्य को अपने कर्तव्यों को यज्ञ की भावना रखते हुए करना चाहिए। जब मनुष्य इस सृष्टि–चक्र के अनुकूल नहीं चलता, तो वह भोगों में रमण करने वाला मनुष्य व्यर्थ ही जीता है एवं पाप आचरण करता है। सृष्टि चक्र की अवधारणा को समझ कर एवं उसके अनुसार जीवन यापन करने से मनुष्य ही नहीं बल्कि समस्त प्रकृति में संतुलन बना रहेगा और सब का पारस्परिक उद्धार होगा।

Compliance with ethical standards Not required.
Conflict of interest The authors declare that they have no conflict of interest.

References

[1] Acharya SS. Parmarth aur svarth the samanvay. Haridwar: Shri Vedmata Gayatri Trust; 2014. 2 p.

[2] Acharya SS. Parmarth aur svarth the samanvay. Haridwar: Shri Vedmata Gayatri Trust; 2014. 1 p.

[3] Ramsukhdas S. Srimad Bhagwadgita Sadhak Sanjeevani. Gorakhpur: Gita Press; 2019. 184 p.

[4] Ramsukhdas S. Srimad Bhagwadgita Sadhak Sanjeevani. Gorakhpur: Gita Press; 2019. 182 p.

[5] Acharya SS. Parmarth aur svarth the samanvay. Haridwar: Shri Vedmata Gayatri Trust; 2014. 6 p.

[6] Ramsukhdas S. Srimad Bhagwadgita Sadhak Sanjeevani. Gorakhpur: Gita Press; 2019. 182 p.

[7] Acharya PSS. Yajna ka jnana vijnana. Mathura: Akhand jyoti sansthan; 1998. 2.71.

[8] Ramsukhdas S. Srimad Bhagwadgita Sadhak Sanjeevani. Gorakhpur: Gita Press; 2019. 182 p.

[9] Ramsukhdas S. Srimad Bhagwadgita Sadhak Sanjeevani. Gorakhpur: Gita Press; 2019. 187 p.

[10] Acharya PSS. Yajna ka jnana vijnana. Mathura: Akhand jyoti sansthan; 1998. 2.71.

[11] Ramsukhdas S. Srimad Bhagwadgita Sadhak Sanjeevani. Gorakhpur: Gita Press; 2019. 182 p.

[12] Acharya PSS. Yajna ka jnana vijnana. Mathura: Akhand jyoti sansthan; 1998. 2.71.

[13] Ramsukhdas S. Srimad Bhagwadgita Sadhak Sanjeevani. Gorakhpur: Gita Press; 2019. 216 p.

[14] Ramsukhdas S. Srimad Bhagwadgita Sadhak Sanjeevani. Gorakhpur: Gita Press; 2019. 192 p.

[15] Acharya PSS. Yajna ka jnana vijnana. Mathura: Akhand jyoti sansthan; 1998. 2.71.

[16] Ramsukhdas S. Srimad Bhagwadgita Sadhak Sanjeevani. Gorakhpur: Gita Press; 2019. 194 p.

[17] Ramsukhdas S. Srimad Bhagwadgita Sadhak Sanjeevani. Gorakhpur: Gita Press; 2019. 197 p.

[18] Acharya PSS. Yajna ka jnana vijnana. Mathura: Akhand jyoti sansthan; 1998. 2.71.

[19] Goyandka SK. Shrimadbhagwadgita Shankar Bhashya. Gorakhpur, India: Gita Press; 2010. 61 p.

[20] Acharya PSS. Yajna ka jnana vijnana. Mathura: Akhand jyoti sansthan; 1998. 2.71.

[21] Ramsukhdas S. Srimad Bhagwadgita Sadhak Sanjeevani. Gorakhpur: Gita Press; 2019. 198 p.

[22] Acharya SS. Parmarth aur svarth the samanvay. Haridwar: Shri Vedmata Gayatri Trust; 2014. 13 p.

[23] Acharya PSS. Yajna ka jnana vijnana. Mathura: Akhand jyoti sansthan; 1998. 1.3.